लव कुमार की कविताएँ

गाँव- लौटों, पोस्ट एवम् तहसील
नारायणगढ़, जिला- अम्बाला
हरियाणा
lovekumar4567@gmail.com

कर्तव्य

सबसे पहले नमन है मेरा
उस धरती को
जिस पर बिसर रहा दिन जीवन
उन बूंदों को भी नमन है
जो रुकी रहीं रात भर
घास की नोकों पर
नमन है, उन कमलों को भी
जिनसे महक रही है प्रकृति
नमन हूँ करता
उस औरत को
जो
शिखर दोपहरी में भी
जाती हर रोज खाना लिए
नहीं भूला हूँ धूल से सने
रास्ते को नमन करना
जिस पर,
गायों के असंख्य पैर छपे हैं
लाल आसमाँ में
उस डूबते सूरज को भी नमन करूँ
और,
करूँ समर्पित इस मन को भी
इनके कर्तव्यों के प्रति।

खोया हुआ गांव

इस गाँव को भी शहर बनना है एक दिन
ऐसा आभास होता है इसकी चाल ढाल से
कभी दर्ज थे यहाँ
सजीव काश्तकारी के औजारों के चित्र
मिट्टी की पहली परत पर
नंगे पाँव की लकीरें
गवाह थी किन्ही दस्तावेजों की
आज एक अजीब सी आभा
देख रहा हूँ यहाँ

सूना पड़ा है पनघट
ढक दिया है कनक तीलियों से
ख्वाजा दवार को बलपूर्वक
दब गए हैं कंकरीट की तहों में
नन्हे बछेरुओं के पदचिह्न
आम अमरूद के पेड़ों की संख्या भी कम है
खेतों में खड़े कुछ लम्बे दरख्त
देख रहे हैं उजड़ती बस्ती की तरफ

तालाब की गहराई और घेरा
घट गया है किसी बुजुर्ग की आयु की तरह
चिड़ियों का बसेरा भी कहीं नजर नहीं आता

शायद लग गई है भनक उन्हें भी
इस गांव के शहर होने की
गाँव के पोस्ट मैन का थैला
टंगा है उसके घर की खिड़की पर
धूल से सना हुआ
जब से एक विशाल टावर लगा है यहां
मुखिया के घर के पास

आज काफी अरसे बाद लौटा हूँ
गाँव में
यहाँ सब कुछ पहले जैसा नही रहा अब
इकबाल चाचा माथे पर हाथ टिकाए
पहचान रहे हैं मुझे
ढूंढ रहा हूँ मैं भी उसकी आँखों में
एक खोया हुआ गाँव
परन्तु लगता है
बहुत देर हो गई है मुझे लौटने में।

तृतीय लिंगी अवतार

दो ढह गये किनारों के मध्य से
गुजरता हुआ
अपवित्र जीवन का स्रोत
जमीन आसमान न फटा उस वक्त
जब रचना हुई होगी
इस विधान की

कहाँ खड़ा है ये
तृतीय लिंगी अवतार
आज के सभ्य समाज की
मुख्य धारा से कटकर
मौन-
अपराध बोध सा
अपने वजूद को तलाशता

जीवन जीने के संग्राम में
ये बोझ ढोना मुमकिन नहीं
भावनाओं से रहित
इस सभ्य समाज की दहलीज पर
बस यूँ कटता है पहाड़ सा जीवन
मानो-
हर रोज गुजर जाता है कोई बादल
फसल के नये अंकुरों को
तड़पता छोड़

सूर्यास्त से होती है
इनके जीवन के हर दिन की शुरूआत
शायद चाँद भी विरोध करता रहा है
इनके भाग्य का
पाक्षिक दौर में अपने बदन पर
काला वस्त्र पहन कर
सृष्टि के आरम्भ से ही

हजारों, लाखों, करोड़ों, हाथ
उठते कई बार
किसी आसामाजिक तत्व के समर्थन में
परन्तु अफसोस,
समाज का एक अभिन्न अंग
अर्धनारीश्वर बनकर
छानने लगता है
धरती का कण-कण
अपने घुंघरूओं की ध्वनि से

ये बुलंदियां
किस काम की रही होंगीं
जब कोई छूट गया हो
इस भीड़ से
निरीह प्राणी की तरह
पहचान करनी होगी
इनकी आत्मा की स्वराध्वनि की
तलाशना होगा इनका वजूद
अपनी अर्न्तात्मा के
द्वार के आस पास

शायद तब संपूर्ण होगा
दो ढह गये किनारों से गुजरता हुआ
सृष्टि का ये विधान
आधे-अधूरे जीवन का सार
ये तृतीय लिंगी अवतार।

किसान कवि

अब के बरस खूब टपकी है

नीले रंग की स्याही
अथाह बादल रूपी सागरों से
वो देखो !
खाली हो गए हैं सागर
मुझे भी फुरसत नहीं है
मैं भी कलम रूपी हल को लिए
सुबह सूरज से पहले पहुँचता हूँ
इस सफेद से कागज जैसी
धरती पर किस्मत की लकीरें खींचने
बड़ा आनंद है इस ठंडी बयार में
जो शहद से भी मीठी
बुला रही है पर्वत से मधुमक्खियों को
अब तो थकावट नहीं
शिखर दोपहरी में भी
धूप चुभती नही
कर्ज बहुत है इस छोटे से किसान पर
एक कवि की तरह
जो समाज की चिंता में डूबा
रात भर जागता है
ऐसा लगता है इस बार
सारा कर्ज उतर जाएगा
इन लहलहाते खेतों को देखकर
जो दूर से बुलाते हैं मुझे
अपने रंग में छुपाने
मैं भी इस सोने जैसे रंग में
सपने सुनहरे कर रहा हूँ
सबका तन एक हो जाएगा
इस बार भरपेट राशन होगा
एक टुकड़ा भी ज़मीन का
पूरी तरह अपना होगा
काश! इन सपनों में
हकीकत का रंग भर जाए
इस बार हर बार से ज्यादा किया
कर्ज के खण्डहर से बाहर निकलना चाहा
आज फिर ये वही किसान है
जो कवि की तरह चिंता में डूबा
चिंताग्रस्त।

किसान

चल पड़ा एक हलधर
तारों की छाँव में
निर्जल व्रत लिए
करने धरती पर उपकार
ओस की बूंदें चरण छूकर
माँग रही हैं मोक्ष वर

पक्षी समूह निकल पड़ा नीड़ों से
चल पड़ा सूरज को छूने
लौटेगा-
शाम ढलने तक

खेत पड़ा सो रहा आकाश सा
जागा पाँव की आहट से
एक छोर थामे
चल पड़ा मसीहा
धरती चीरने सृजन की
श्यामल तन तप रहा दोपहरी में
बूंद बूंद पिघल रहा है सोना
मिट्टी में मिल उपजेगा कल

अमरत्व का सेवन कर
सुस्ता रहा
एक युग जैसा
एक पल का जीवन
चल पड़ा सोने को बोने
बीज बीज छिटकाकर
बैठा मेड़ पर गणित लगाने

चली आ रही एक शाम अनोखी
उत्सुक करती उपकारी को
चला अर्धनग्न
गोधूलि में समाने
अपने कर्मों का लेखा ले

लौट रहे हैं सुबह के पक्षी
पश्चिम में
बादल को छूने
थककर पहुँचा घर आँगन में
चाँद भी पहुँचा तारों के दीपक ले
श्यामल तन की आरती को

मरणासन्न में लेटा धरती पर
संचार हो रहा

आलौकिक शक्ति का
अगली सुबह फिर-
चल पड़ा वह हलधर
तारों की छाँव में
निर्जल व्रत लिए
करने धरती पर उपकार।

प्रश्नकाल

सुबह ही सूरज की ओर पक्षियों का पलायन
डैनों को निरंतर पीटते रहने का अभ्यास
बिना विश्राम के चलते चले जाना
रोटी के लिए जरूरतमंद की
दिनभर की जदोजहद
एक प्रश्नकाल है
जो कहीं लिखा नही गया किसी भी भाषा में
जिसकी लिपि का अविष्कार होना अभी बाकी है
शायद,

किसी पहाड़ की पीठ से बर्फ का पिघलना
किसी नदी का
सूखे रेत में मछली की तरह दम तोड़ना
या फिर किसी दरख्त के ठूंठ का
दीमक के विरान घर में तबदील हो जाना
एक प्रश्नकाल है

तेजाबी हमले में किसी नाबालिग का
प्राणों को खो देना
उसकी एवज में किसी चौक पर किया गया
कैंडल मार्च या फिर दो मिन्ट का मौन
वास्तव में एक प्रश्नकाल है
जिसका माकूल जवाब ढूंढने में
लगता है एक सदी जैसे समय का चक्र

भूख प्रश्नकाल है
अविश्वास भी प्रश्नकाल है
प्रश्नकाल उल्टा लटका हुआ समय भी है
आज का दौर भी खुद एक प्रश्नकाल है
हर सपना जो कभी पूरा होने के कगार पर था
परन्तु अधूरा ही रहा
एक प्रश्नकाल है
जीवन जीने के साधनों का
सीमित जगह पर एकत्र हो जाना
अभावग्रस्त का मूलभूत मूल्यों के लिए लड़ाई
लड़ना भी
एक प्रश्नकाल है

इन प्रश्नों को अतारांकित प्रश्नों की श्रेणी में रखना
होगा
क्योंकि ऐसे बहुत से प्रश्न का
मौखिक रूप में जवाब बेअहमियत साबित होगा
इनका जवाब रखना होगा कहीं लिखित रूप में
जब कभी भी दो मिन्ट का मौन होगा
या फिर भूख और अविश्वास की बात होगी
या फिर मूलभूत मूल्यों की लड़ाई में
हार हो रही होगी किसी जरूरतमंद की
तब इन प्रश्नों का लिखित रूप
एक गवाही के रूप में रखा जाएगा
प्रश्नकाल के दौरान।

सन्नाटा

आ ले चलूँ तुम्हें
गहरे सन्नाटे की खाई में
जो दफ़न हैं मन की गहराईयों में
जहाँ कोई आता जाता भी नहीं
कुछ पल तो बैठना
उन अन्धेरों में
जहा सिर्फ अन्धेरा और सन्नाटा है

किसने बुना होगा ये
इतना सघन इतना विस्तृत
तिनका-तिनका जोड़कर
किसी कंकरीट की दीवार की मानिंद
इसको छेदना मुमकिन नहीं
ये उम्र कैद की तरह
घुल रहा है अन्दर ही अन्दर
नमक और रेत सा

कौन चाहेगा इसके करीब आना
ये सन्नाटा इस ग्रह का तो नही लगता
कैद है कोई
भँवरजाल है अनसुलझी पहेलियों से भरा
पर चाहता हूँ

कुछ पल तो बैठना इस सन्नाटे में
मेरे साथ
अन्धेरे की दीवार से सटकर
क्योंकि
यहाँ कभी कोई आता जाता भी नही।

एक जोड़ी बैल

बरसों बाद इन आँखों ने
गाँव की पगडंडी पर देखे
सरपट चलते कदमताल कर
होड़ मचाते धूल उड़ाते
मुन्शी के दो हीरा मोती

बदन छरहरा आँखें गर्वीली
पैरों से मिट्टी की महक आ रही
ओस की बूदें चरणर्स्पश कर
धोने लगी हैं मिट्टी के कण
चल पड़ा है प्राची का पथिक भी
संग मार्ग दर्शक सा अर्धनग्न तन

फूट रहे हैं नन्हे अंकुर
हीरा मोती की कदमताल सुन
धरा सुन्दरी शरमाती लज्जाती
ओढ़ रही हरियाली चादर

नागा बाबा की फसल लहलहा रही
जो लाखों करोड़ों हाथों का स्पर्श है
नित प्रतिदिन संगीत है सुनती
बैलों के गले के वाद्ययंत्र का
धानी रंगत में रंगने लगी प्रकृति
लिए स्वर्ण आभा सी कोई

श्यामल तन भी खड़ा टकटकी लिए
देख रहा आसमान के छोर तक
याद आ रहा एक एक पल वो
मिट्टी से जब मिट्टी हुआ था
हीरा मोती की पीठ थपथपा रहा
ढह जाएगा इनके दम से
काल कपाल सा कर्ज का खंडहर

विराट सवरूप लिए खोने लगा था
हीरा मोती की चरणधुलि में
वामन सा अवतार लग रहा
नाप रहा तीनों लोकों की धरा को
सृष्टि का अदृश्य बोझ लिए ।